

विक्रेता  
नंदकिशोर ऐंड ब्रदर्स,  
चौक, काशी ।

प्रथमावृत्ति  
मूल्य १)

मुद्रक—  
वी. के. शास्त्री;  
ज्योतिष प्रकाश प्रेस, काशी  
३१०४

# सूची

—४—

	पृष्ठ		पृष्ठ
१ कटुसूत्र	३	१८ मृगच्छोदने ।	१३
२ श्रीपद्म	४	१९ नीलकण्ठ	१४
३ वप्रां	८	२० अग्नि-यज्ञी	५७
४ पादस प्रमोद	१७	२१ गदी	५१
५ तिमिरिम	२०	२२ अन्ध्या बुद्धि	६२
६ शरदु-अगमन	२२	२३ मन्दिर	६१
७ जगत्	२४	२४ टीपराग	१०
८ गङ्गा	२४	२५ बाल-रमति	१०
९ विशा	३१	२६ धरोहर	१०
१० अक्का	३४	२७ गिन्दर	
११ अक्ष	३६	२८ बर्ग	
१२ शत विहारा	३८	२९ अक्ष-रूप	
१३ मन्त्र	३९	३० अक्ष-रूप	
१४ पुत्र	४३	३१ अक्ष-रूप	
१५ अक्ष	४६	३२ अक्ष-रूप	
१६ अक्ष	४८	३३ अक्ष-रूप	
१७ अक्ष	४९	३४ अक्ष-रूप	
१८ अक्ष	५०	३५ अक्ष-रूप	
१९ अक्ष	५१	३६ अक्ष-रूप	
२० अक्ष	५२	३७ अक्ष-रूप	

कोई दूसरा कवि उसकी विभूति पर उस समय वैसा मुग्ध नहीं हुआ। हाँ, गद्य के क्षेत्र में ठाकुर जगमोहन सिंह ने भी प्रकृति की शोभा के मनोरम दृश्य अंकित किए। इन सहृदय व्यक्तियों ने प्रकृति-सुषमा की रूप-रेखा बहुत ही रमणीय खांची, इसमें संदेह नहीं। किंतु इनके वे वर्णन अलंकृत शैली में हुए हैं। अलंकारों के अधिक लदाव से कहीं कहीं उनकी चमक में शोभा दब सी भी गई है। दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि कवि के हृदय को ऐसे ही दृश्य आकृष्ट कर सके हैं, जो अद्भुत कहे जाते हैं या जो विशिष्ट हैं। सामान्य दृश्यों, सामान्य पशु पक्षियों, सामान्य लता-वृक्षों आदि की ओर इनकी दृष्टि उतनी नहीं गई जितनी जानी चाहिए।

इस आभाष की पूर्ति 'भक्त' जी की कविता द्वारा हुई, जो 'धमोय' (सत्यानाशी, भडभाँड़) की छटा पर भी मुग्ध होते हैं, जो टिटिहरी की बागी में भी आकृष्ट होते हैं और जिनके हृदय में ऊदविलाव के लिए भी उतना ही स्थान है जितना किसी परंपरा प्रेमी के हृदय में गजेंद्र के लिए हो सकता है। यद्यपि संप्रति हम सामान्य सृष्टि की ओर हिंदी-कवियों की अभिरुचि अंगरेजी साहित्य की ही प्रेरणा में हुई है तथापि है यह वस्तुतः भारतीय साहित्य की प्राचीन प्रवृत्ति ही। महर्षि वाल्मीकि ने प्रकृति-वर्णनों में ग नान्य पेड़ पत्तियाँ या पशु पक्षियों का नाम लेने में सकोच नहीं किया है। यह प्रवृत्ति गम्भीर-वाङ्मय में कुछ कुछ कालिदास और भवभूति तक तो बनी रही, पर आदर्प तक आते आते बहुत-कुछ परिवर्तित हो गई। काव्य में विशिष्ट का ही महत्त्व रह गया, साधारण उपेक्षित हो गया। आरंभ में हिंदी कवि एक ही प्रकृति की ओर झुके ही नहीं, दूरे-दूरे भी तो उमंगे अधिस्तर उद्दीपन का ही जाल जाले रहे। आधुनिक काल में प्रकृति की विभूति के दर्शन



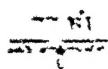




पृष्ठ

पृष्ठ

३५. त्रियोगिन	६६	४१. जीवन यात्रा	१२०
३६. प्रेम	१०७	४२. कौन ?	१२१
३७. अनाथा	१०८	४३. हा ! ताल !	१२३
३८. गिर	१०६	४४. उत्सर्ग	१२४
३९. गंगार	११६	४५. बंगाल	१२६
४०. चीत	११८	४६. विदा	१२६



सिन्धु जमी नम्रमान होय मे, उमी बेग मे—  
 लगे नाच पर लहर गया की गरमी से जा  
 अंटे पर बैठे सेते हैं, बहुत टिटिटरी  
 गरमी में गल्ली देने हैं, बैठे पोव -  
 गाग जब अंटे को सेती, चौंकीदारी  
 चित्ता कर सचेत कर देता जब कोई भी  
 इसी तरह दारी दारी से चारा चुगते  
 पंच-अग्नि को ताप प्रेम से तप पूरा क  
 अब एठ योग हुआ है पूरा, मिला तपस्या व  
 सोती-से अंडे सब टूटे, उनसे आये ल  
 सुन्दर बच्चे लगे दौड़ने तात-मात के  
 उन भूखों को लगे चुगाने ये बेचारे भी  
 जब तक नभ में बादल छाये, खूब लगे  
 मछली खुद ही लगे पकड़ने, हूब हूब प  
 दिनकर ने चाहा पी डालूँ उड़ा सभी पृथ्व  
 चाहा पूर्ण-पयोधि पान कर दिखलाना कुं  
 इसी गर्व मे लगे सुखाने जीवन-स्रोत व  
 भुलस गई सारी हरियाली, मुरझा गई न  
 खोले हुए सिवार-बाल को, कृशित कलेवर





मूर्छा ही के आ जाने पर लेते थे थोड़ा विश्राम ,  
 और नहीं तो लड़ते रहते, रुकने का नहि लेते नाम .  
 विकट अंशुमाली आतप से सूख गई थी हरियाली ,  
 मुरदों ही सी गड़ी हुई थी जिनको भू ने जड़ खाली ,  
 रत्न-वर्षा कर नेधराज ने कहा—‘निकल आओ बाहर ,  
 मैं आ गया चजा कर डंका, नहीं किसी का मानो डर’ :  
 पत्तों की तलवार बोध कर, कोंपल का ताने भाला .  
 हरी घाम दड़ दड़ कर बोली—‘आये तो लड़नेवाला !’  
 बीज पड़े जो सोते थे उग हरे हरे हो पर पैला ,  
 चाहा चिड़ियों-भा उड़ जाना, जड़ जालों ने लिया पैना :  
 जितने भी थे रवि के मारे, जिन्हें जलाया था कर छार .  
 नयके सृग्मे तन मे घन ने तुरत किया जीवन-मंचार :  
 कृशित नदी बढ़ पली उमट पर समय देस अपने अनुदल .  
 पा कर दाढ़ बनी मदमाती, हुआ सलिलमय सारा दल  
 सरितापति का देस सदास, लख कर धाराधर की पौज .  
 जली हुई रवि की किरणों से निबल पली बरने बने मौज  
 धानो की ब्यारी जो भरती, जल मे दिरे दृनों के .  
 ले ले लहर गई पतनी ही तने तर के पूजो के .  
 गंगा लज्जा था घना बजारो मे भाऊ’ सरपट दल वन ,  
 जितने शूरदूत मे मरुतार मिटा के दोहों से रक्त .

विमल प्रभा में रजनीपति की, पत्र-विहीन पेड़ की डाल ,  
 चित्र-विचित्र बनाती भूपर, चित्रित करती चित का हाल ।  
 उजड़े पड़े पत्तासों के वन, काली कलियाँ बस दो-चार  
 लाल लाल हैं जीभ निकाले, खा कर शिशिर-पनन की मार ।  
 फूले हैं रसाल, रतिनायक पत्तों में छिप छिप कर, बाण  
 मार रहा है तान तान कर, लेने को विरही के प्राण ।  
 कोंटेदार एक भाड़ी की किसी त्रिफंकी डाली पर ,  
 है प्याला-सा बना घोंसला—अन्दर है रुई श्री' पर ।  
 पत्तों ही का दुर्ग बना है, नहि निगाह का वहाँ गुजर,  
 कोंटे भाले लिये खड़े हैं, सूर्य-किरण भी जाती डर ।  
 उसमें आ छोटी-सी चिड़िया बैठ गई अडे पर जब ,  
 धूँधट हटा खोल दो माँकी पत्ते गिरा शिशिर ने तब ।  
 इकदम परदा हटा देख कर चिड़ियाँ चक्र मे आई ,  
 पर मे अपना शीश छिपाये हुए बहुत ही घबड़ाई ।  
 इतने ही मे पहुँचा आ कर अपना दल ले कर ऋतुराज ,  
 स्वागत गाने लगा विहगम फूल फूल सज सज कर साज ।  
 इस चिड़िया की दशा देख कर उसको बड़ी दया आई ,  
 हरा-भरा कर दिया विपिन को, कलियाँ खिल खिल मुसकाई ।  
 नव पल्लव से उसकी भाड़ी अपने हाथ सजा आया ,  
 चितकबरे उसके अडे पर फूलों को जा लटकाया ।  
 शीघ्र नये बच्चों को ले कर खगी मजु गुण गावेगी ,  
 फूले फले वसन्त सदा वह नित उठ यही मनावेगी ।

---

## पावस-प्रमोद

विल्व-वृक्ष नव दल से सज कर जब कलियाँ चटकाता है,  
वायु-विकम्पित पुष्प-भार से वज्रुल-वृक्ष झुक जाता है :  
फुल्लुँघनी चिड़ियों के जोड़े जब रस लेने आते हैं,  
फल प्रछूते छूते ही बस आँसू-से मर जाते हैं ;  
ताप-निवारण करने को जब श्याम-मेघ छा जाते हैं,  
तब पावस का स्वागत गा गा हम कितना सुख पाते हैं ।  
हवा चली, पानी भी आया- जलमय सारी भूमि हुई,  
वाल-मंडली ने कागज की नौकाओं की धूम हुई ;  
छोड़ समाधि निकल आये हैं पीत-वर्ण दादुर बाहर .  
चिड़ियों की दन आई, जब से चींटों के निकले हैं पर ,  
नाला उदल उदल मटमैला चक्कर मारता बहा हुआ  
जा करके मिल गया नदी से शर मवाना चला हुआ  
धार विरद मान अड्डा पाना वार नाना भर  
दृव दृव फिर फिर नर नर नर नर नर नर नर नर  
धानी की धारा नर नर नर नर नर नर नर नर  
पाने की भाग नर नर नर नर नर नर नर नर

आज सूर्य उसका वैरी बन कर—रथ पर बैठाये ।  
 सरिता-हरण किये जाता है, तट को दूर हटाये ॥  
 विरह-विहग 'पतरेंगा' 'मैना' आ छाती छलनी कर ।  
 तट के मानस के अन्दर रम रहे बना अपना घर ॥  
 फिर उन विहगों के उर में निज निहित प्रेम-प्रतिमा रच ।  
 तट सेता है बड़े यत्न से विरह-ज्वाल में तब तब ॥  
 खड़ा खड़ा आहें भरता है दोनों बाँह उठा कर ।  
 तटिनी भी सूखी जाती है प्रिय-वियोग दुख से भर ॥  
 स्वर्ण-कटोरे में 'घमोय'¹ प्यासी जल याच रही है ।  
 बाँस छेद बंसी के स्वर पर मधुपी नाच रही है ॥  
 मन्दारो के तापपुंज से, होठ पड़ गये नीले ।  
 पीले वेणु हुए, 'तिनपतिया'² में छिप सोये टीले ॥  
 मधुमक्खी जल गई फूल पर पानी पर जा बैठी ।  
 कमलनाल है भाँज रहा फूलों की बना वनैठी ॥  
 कोसो तक करील के वन में तितली फिर आती है ।  
 पत्तों की भी छाँह नहीं छिपने को वह पाती है ॥  
 चिड़ियाँ भूल गई हैं गाना हाँप हाँप मुरझाई ।  
 किसी जलाशय के तटस्थ तरु पर छिप जान बचाई ॥  
 छिपा केहरी किसी कन्दरा में है जीभ निकाले ।  
 हिरन चौकड़ी भरना भूले, हुए धूप से काले ॥

१ एक काँटेदार घास, जिसके पीले-पीले फूल होते हैं

२ एक घास

इन छोरों की पीठों पर बैठा भुजंग विलकुल बेडर :  
 खुर के खुट खुट से जो चिड़े उड़ते या लेता धर कर :  
 बढ़ कर नदी घटी जो थोड़ी और चली जो पुरवाई .  
 लहरे उठ तट लगी काटने, हुई करारों की दाही :  
 बड़ी नाव पर धीवर ने सब माल लाद, पतवार नें माल .  
 रोती घरनी छोड़ किनारे, दी नौका धारा में डाल  
 भँवर बचाता तुझा राह में लहरों पर उठता गिरता .  
 देग देरा पैसे के लालच रहा अवेले ही फिरता .  
 रमते योगी ने भी आसन डाल दिया चौमाना में ,  
 आंगों ने हँ रात पाटली विरहिन पति की आना ने  
 जल भरते, सरिता भर उनडे, उमड़-धुमड़ घन आंगों फिर .  
 करो हृदय विरहिन का शीतल, पति से मिला, पेट दिन फिर ।

## वर्षा

ज्वर-सा ताप चढ़ा था जग पर, नहीं उतरता था पारा ;  
सूख सूख हो क्षीण-कलेवर बहती थी सरिता-धारा ;  
बालू था बल<sup>१</sup> रहा सलिल जल कर तट को देता था छोड़ ,  
फैल गये सारे गरमी से, ली सरिता ने देह सिकोड़ ;  
जीने के लाले पड़ आये या उड़ते अंगारे हैं ,  
ग्रीष्मराज के लाल सँवारे अथवा राजदुलारे हैं ;  
अथवा ईर्ष्यावन्त प्रकृति-सा देख और पौधों का हास ,  
मन में फूला नहीं समा कर बिहँस रहा है कुटिल जवास ;  
धूप कह रही खूब पड़ूँगी, उसकी फिरी दुहाई है ,  
हवा गई है विगड़ हवा की, फिरती वह घबड़ाई है ;  
जलती गरमी में तरंग ने जीभ निकाली है ज्यों ही ,  
उठा बुलबुला, लहर-जीभ में छाला पड़ आया त्यों ही ;  
पानीयुत मोती को जैसे पानी में रक्खे हो सीप ,  
भुजा-मध्य आलिङ्गित शिशु-सा दो-धारा-मध्यस्थित द्वीप ,  
पानी के कम हो जाने से, नदी-गर्भ से हो ऊपर ,  
सूर्य-रश्मि में लगा चमकने, छोड़ गई निज चिह्न लहर ,  
मछली का था वास जहाँ पर वहाँ लगी उड़ने के बूल ,  
जलचर थलचर नभचर दिन में जहाँ नहीं आते हैं भूल ;

## जाड़ा

भू-मंडल ने चक्कर खाया, ऋतु बदली, जाड़ा आया .  
 अग्निकोण से लगे-दिवाकर तिरछी हुई बिटप छाया ;  
 विप को ठंढा करनेवाले. हिम की ऊपर देख स्पाधि ,  
 नाग भाग पाताल सिधारे, स्वास बढ़ा कर लगा समाधि ।  
 दिन मिट्टा, दिनकर से भीगी रात हुई भारी काली ,  
 पड़ने लगी वर्ष, पर्वत पर, रवेन हुई मय हरियाली ।  
 देव परम निष्ठुर बन जाना, पत्थर हो जाना सर का .  
 हिम हो जाना रमी हृदय का जिस पर घना सुन्दर धरा—  
 पर्वत, चर्चई, हंस, बड़ाहल, पट्टिहारी, टीका, घोघिने,  
 ते निरदास उठे नीचे धी धार धार सरवर से मिल ।  
 एक एक से पंग्व भिलाये, उड़ दल वे दल, घना लकीर ,  
 गुरुपा वे पीछे ही पीछे उतरे नीचे सर वे तीर ।  
 उड़ उड़ तैर तैर पानी में मगली गाल, सुगन्ध धान ,  
 बिस्तु नहीं हम सुन्द ने लोवा मपनी जन्म धरादा धान ।  
 गों ही जाने व पर दूटे, पर्वत पर भी वर्ष गली ,  
 ल्यों ही इन दिनों में तोली मपने मपने देव रहने  
 स्वेदन भी मप गये तिला गुन, पदल परते दिना विमान,  
 'मगर' फिर ई गये मात से, हृष्ट रेत पर तेरे दाग ।



## वर्षा

ज्वर-सा ताप चढ़ा था जग पर, नहीं उतरता था पारा ,  
सूख सूख हो क्षीण-कलेवर बहती थीं सरिता-धारा ;  
बालू था बल रहा सलिल जल कर तट को देता था छोड़ ,  
फैल गये सारे गरमी से, ली सरिता ने देह सिकोड़ ;  
जीने के लाले पड़ आये या उड़ते अंगारे हैं ,  
ग्रीष्मराज के लाल सँवारे अथवा राजदुलारे हैं ;  
अथवा ईर्ष्यावन्त प्रकृति-सा देख और पौधों का हास ,  
मन में फूला नहीं समा कर बिहँस रहा है कुटिल जवास ;  
धूप कह रही खूब पड़ेंगी, उसकी फिरी दुहाई है ,  
हवा गई है बिगड़ हवा की, फिरती वह घबड़ाई है ;  
जलती गरमी में तरंग ने जीभ निकाली है ज्यों ही ,  
उठा बुलबुला, लहर-जीभ में छाला पड़ आया त्यों ही ;  
पानीयुत मोती को जैसे पानी में रक्खे हो सीप ,  
भुजा-मध्य आलिंगित शिशु-सा दो-धारा-मध्यस्थित द्वीप ;  
पानी के कम हो जाने से, नदी-गर्भ से हो ऊपर ,  
सूर्य-रश्मि में लगा चमकने, छोड़ गई निज चिह्न लहर ,  
मछली का था वास जहाँ पर वहाँ लगी उड़ने है धूल ,  
जलचर थलचर नभचर दिन में जहाँ नहीं आते हैं भूल ;

## संध्या

अंगारे पश्चिमी गगन के भँवा भँवा कर छार हुए,  
 निर्मल खो सोने का पानी पुन. रजत की धार हुए।  
 रश्मिजाल से खेल खेल कर ओखमिचौनी तरु-छाया  
 सोने चली गई दिनपति-सँग. विलग नहीं रहता भाया।  
 दिन भर जो चुगती फिरती थी विहगावलि उड़ इधर-उधर.  
 करने लगी वैसेरा तरु पर धन्यवाद प्रभु को दे वर।  
 पेवत एक काक का जोड़ा अभी बहुत घबड़ाया-सा.  
 उड़ता हुआ चला जाता है धुंधले में को को करता।  
 नहीं वैसेरा अभी मिला है पता न चलता काले में,  
 एक एक तरु देग रहे हैं ऊपर से पेधियाले में।  
 फिरे गये थे गाने में चुट, नभ पथ में ग्राते आते,  
 रसी लिए बायस देवारे सनसन हैं उाते जाते।  
 दस सारे सदा गृत गये हैं, पत्तों की रसता हैं दन्त,  
 ग्राती हैं विभगदरी राती गीले श्यामल वेश स्वप्न।  
 मधुप सुग्म से बात न करते, तितली पर न रिहानी हैं,  
 निद्रा सनकी जाग वन्द कर परदा करती जाती हैं।  
 वसन्तवाहन दना सन्तरो, हुरत टोटता गीत निरार,  
 रत्नीनगरी की बजिया जो दिखी बहे लह, वर गन।

“ढींग मारते हो तुम प्रियवर ! मुत्ता-रत्न उपजाने की ,  
 कमलापति को कमला दे कर देग लोक गपनाने की ,  
 अपनी प्रबल विद्याल मुजा से बाँने हो भू मंडल को ,  
 डाले हो निज हृदय गर्भ में कितने उष हिमाचल को :  
 माना तुम गम्भीर बड़े हो भीर बड़े ही प्राणाधार !  
 फिर भी सहनशीलता की कुछ हद होती है आगिरकार ;  
 यह सब अच्छी तरह जानता हुआ रचे तुमसे फिर बैर ,  
 कौन ? वही दिनकर बेचारा, है अन्धेर नहीं अब दौर ;  
 मुझे जला कर मुखा दिया है, जीती मरती आई हूँ ,  
 तुमको लाज नहीं फिर भी कुछ, यही देख शर्माई हूँ ।”  
 यह सब सुन जलनिधि ने समझा दिनकर के उत्पातों को ,  
 लज्जित हुआ परम क्रोधित हो, सह न सका इन बातों को ,  
 दल-वादल को तुरत बुला कर बोला, “ऐ मेरे रण-वीर !  
 बहुत खेत तुमने जीते हैं, कभी नहीं चूका है तीर ,  
 आज समर करना है तुमको बहुत चमकनेवाले से ,  
 आज तुम्हें लोहा लेना है बहुत बहकनेवाले से ;  
 जाओ अभी घेर लो उसको अन्धकार मे रक्खो बन्द ,  
 ब्रह्म शस्त्र को छोड़ छोड़ कर तुरत मिटा दो सारा द्वन्द ,  
 केवल उसका गर्व खर्व कर, कर उसके घमंड को भंग ,  
 उसको देना छोड़ कैद से, और अधिक मत करना तंग ;  
 अमल अमृत लो, इसे मिलाकर सरस सुधा बरसा देना ,  
 सूखे मुरझाये जीवों को जीवन दे हर्पा देना ;

वन-श्री

निशा का पी निशा सब सो गए वस ,  
 परस जिससे हुआ है तेरा पारस,  
 उधर सोना ही वस सोना पड़ा है,  
 तेरा मद सबकी आँखों में चढ़ा है !

---



'मैं तो इनसे लोहा लूँगा', बोला इक आगे बढ़ कर,  
 'मल्लयुद्ध कर मैं समझूँगा', कहा दूसरे ने चढ़ कर;  
 'इनको राहु छोड़ देता है, कभी नहीं मैं छोड़ूँगा,  
 चट कर जाऊँगा मैं पूरा, सब घमंड मैं तोड़ूँगा';  
 हुए क्रोध से नीले पीले, लिये शस्त्र पानीवाले,  
 घूम घूम कर लगे गरजने चमक चमक वन मतवाले;  
 सूर्यदेव ने देखी सेना मेघराज की पड़ी हुई,  
 कहीं चमकती तलवारें थीं, कहीं तोप थी अड़ी हुई;  
 दूना हुआ क्रोध का पारा, वेहद लाल हुए रिस से,  
 'इन सबको क्या नहीं सूझता, जाता हूँ भिड़ने किससे?  
 चाहूँ अभी जला दूँ सबको, आग लगा दूँ पानी में,  
 सरिता-सिन्धु अभी पी डालूँ, भूले हूँ नादानी में;  
 नहीं मानते हो तो आओ, करता हूँ शर की बौछार,  
 बरसाता हूँ प्रलय-अग्नि को, अभी जला करता हूँ छार;  
 छोड़े अस्त्र-शस्त्र दोनों ने, चमक उठी चम चम तलवार,  
 तोपें चलीं, आग भी बरसी, होने लगा बार पर बार;  
 कभी मेघ को छेद भेद कर रूई-सा करके टुकड़ा,  
 तेजवन्त दिनकर जय पाता, धज्जी उसकी उड़ा उड़ा;  
 बादल कभी घेर दिनकर को दूर भगा ले जाते थे,  
 घायल करते उसे गिरा कर, खून बहा नहलाते थे;  
 सुबह-शाम दोनों ही दल में हो जाती थी गहरी मार,  
 दोनों लड़ लड़ हो जाते, चलते थे इनने हथियार;

फिर भी मैं विहार करने को नित्य स्वर्ग से आती हूँ ,  
 कुंजों में कुछ रात काट कर तारो-संग छिप जाती हूँ ;  
 तुम कठोर हो मुझे न छूना यही सोच मैं रोती हूँ ,  
 किन्हीं सजल आँखों से निकली मैं उज्ज्वलतम मोती हूँ ।

---

नीचे की गोली मिट्टी में लोट लोट हो कर शीतल ,  
 झाड़ों में बच्चे देते थे, लिपट लिपट करते थे बल ;  
 देख निवास डूबता अपना, सीधा तैर नदी कर पार ,  
 ऊँचे थल में किसी खेत में छिप रहने का किया विचार ;  
 घनी घनी जुन्हरी<sup>१</sup> चारे की, काट गँड़ासे से, जड़ छोड़ ,  
 चला किसान धरे कन्धे पर पकड़ हाथ से पौधे जोड़ ;  
 दौड़े दौड़े शूकर आये, खेतों में जुआर<sup>१</sup> के जा ,  
 खड़ खड़ पौधे लगे तोड़ने, तब किसान का ध्यान गया ;  
 बोझा फेंक, मचाता हल्ला, हरियाली समुद्र को चीर ,  
 फूले वालों के हिलने से नव पराग से भरा शरीर ;  
 पहुँचा जा मचान पर अपने, शोभित ज्यों जल में जलयान,  
 लगा देखने शूकर को जो, गया नदी पर उसका ध्यान ;  
 देखा अति विकराल रूप से नदी बढ़ी ही आती है ,  
 कुछ लट्टे बस और दूर है, प्रलय-काल दिखलाती है ;  
 देखूँ चलूँ भोपड़ी अपनी हूवी है या बची हुई ,  
 हम दोनों के लिये सदा ही रहती आफत मची हुई ;  
 आये थे तब यहाँ मेड़ थी, इक पगडंडी थी जाती ,  
 अरे ! यहाँ तो एक घड़ी में नदी नदी ही लहराती ;  
 आखिर हो कर वही रहा, मेरे जो मैं था जिसका डर ,  
 देव हुए प्रतिकूल हमारे, वर में सलिल गया है भर ;

## मान-लीला

गाल फुलाये हैं क्यों फूल ?  
 तन से लिपटी है क्यों धूल ?  
 मुँह लपेट कलिका क्यों सोई ?  
 ओस दिखर करके क्यों रोई ?

हरी-भरी क्यों रही न दूब ,  
 मुँह लटका हिमकण में डूब ?  
 फूट फूट क्यों रोये बाल ,  
 रुठ-रुठ क्यों बैठे लाल ?

मचल चाँदनी लोट रही है  
 भटकी क्यों-क्या खोद मही है  
 पटक दिया सर ने सर क्योंकर  
 कमल-नयन क्यों जल से है तर

फटा कले ने क्यों झँकल ,  
 गिरे पड़े धरती पर है फल ?  
 शोंटे में है पेसा गुलाब  
 उस वन क्यों वन देनाद ?





हूँ हूँ कर अपना मान ,  
मुझे लगे मनोहर मान ;  
हूँ हूँ हूँ हूँ कर छोटी ,  
वास लवा कर गुँबी चोटी ;

कड़क लठी बरिदा की छापी ,  
कड़क लठी कड़की की चोटी ;  
मिर्च लठी पंकज-जासा मिला ,  
मिर्च लठी भरती मिला मिला :

मनमोहक स्वर मुन का अलि का,  
लठी मिला मिला प्यारी कलिका  
गया रग में गया गुलब  
बेले पर च- काई मारा ,

पल्ल ने हिल हिल ही तात ,  
उभर पर सारी हिलगल,  
बन कड़े- बेल में कड़े  
पिच हो गये ली मगल

लेन लेन का जिरे मिला -  
लेन लेन के लीरे मिला  
लेन लेन के लीरे मिला  
लेन लेन के लीरे मिला



## वृज

पी पी कर समीर-रस तट पर एक वृज है मूल रहा ,  
रूप देख सरिता-दर्पण में गर्व-सहित है फूल रहा :  
पावस में वारिद-वाणों को अपने मर पर लेता है ,  
सरिता पर फैली डालों से मोती चरमा देता है ।

जड़ का प्रेम पाग फैला कर जल में डाला उसने जाल ,  
चंचल चित्तवाली तटिनी भी मौज उड़ाती चलती चाल  
थोड़े दिन तब इन दोनों ने अच्छी दिखलाई रस-रीति  
तरु नन-मन दे मुग्ध हुआ था, नदा रही दिखलाना प्रीति ।

नमः प्रेम वरता था तर में पग चमका नित जाता था  
धर लपट लपट लाया स सों ललाता सो ला  
र र म चमका सफाव सा पथ रभा हा ना र  
र र

पर  
र  
र  
र र







## नीलकण्ठ

व्योम में पर हिलाते जव .  
 श्यामता ने मिल जाते तब ;  
 हवा में ऊपर-नीचे जा ,  
 अंक तुम देते कौन घना ?

वीररस के तुम हो प्रवतार .  
 नहीं तुमको विलास से 'यार  
 तुम्हें भाता है नृपरा डाल  
 उसा पर द्रष्ट मला कर गाल —

नपुंसक न'च देकर पना  
 नरे बुझ मरग उर प्रवर  
 दै दै गाल पर भक्त  
 धर्म गंगा प्रसन्न कर





# नदी

हृदय में जो बहती है सैन्धव है.

मली है फूल की भाँसा पलक है.

उसी मरनी की आँखें हैं बाला.

मरना ही है जिसे नर उन्ने पाला.

पवन के बोन पर नृणी खलेगी.

यही तारों से खेती गैर निर्दोशी.

पान बाँधेगा नारी नरकर.

दिनरा होनूँगे से नरकर.

बन विनो से नर से नरकर.

यही नर से नर से नरकर.

नर से नर से नर से नरकर.

नर से नर से नर से नरकर.

नर से नर से नर से नरकर.

नर से नर से नर से नरकर.

नर से नर से नर से नरकर.

नर से नर से नर से नरकर.

नर से नर से नर से नरकर.

नर से नर से नर से नरकर.

नर से नर से नर से नरकर.

नर से नर से नर से नरकर.

नर से नर से नर से नरकर.



## वन-भ्री

इस जर्जर मन्दिर के अन्दर .  
लिपटा के व्याल तन में विपथर :  
वन भोलानाथ भवहर शंकर .  
हैं रमे मूर्ति मंजुल वन कर ;

फलख वन-विहग मचाते हैं .  
विभुवर की महिमा गाते हैं ।

यह नग्वर जर्जर तन मेरा .  
यह भग्न तट्टर नाया-घेरा .  
प्रागानृष्णा वा है डेरा .  
नर पटा विपद-विपथर-फेरा .

इस टूटे मन्दिर से गदगद .  
रचा गयी आत्मगेने निज घर °

— — —

गरम चासनी का रस लेते, देख आँच होती कुछ कम,  
 पत्ते डाल डाल चूल्हे में आग तापते हैं वे-गम।  
 भीगी रात, कामिनी कोई जो वियोग में रोती है,  
 जाड़े से जिसका आँसू जम बना हार का मोती है।  
 “पाला पड़ा निठुर से ऐसे” व्याकुल हो बोली वाला,  
 “फूली थी मैं जिस आशा में, हाय, पड़ा उस पर पाला।  
 जो ऐसे जाड़े-पाले में अपने प्रियतम को पाती,  
 गर्म गर्म आँसू से अपने, उनके पग को नहलाती।  
 शीत पवन ! उनको लेता आ, मानूँगी तेरा उपकार,  
 चाहे फिर ठंडा कर देना, हो जाने दे आँखें चार।”  
 चला पवन, बादल धिर आया, कुछ कुछ पड़ने लगी फुहार,  
 आँख लगाये रही द्वार पर किसे सुनाती मूक पुकार !

---

“हम तो गिरे कोटि नुत नेने—धर्म-धर्म-संयमवाले,  
 मिटते मिटते देग रहे हैं। वीर मुझन आनेवाले;  
 करते हैं क्या पञ्च धर्म भी गिरती अजा वचाते को,  
 मिट जाने ये पाले हमने आते हैं मिट जाने को ?  
 हिन्दू-धर्म सुमन ललिया जो रक्त-वार दे सीजेगा,  
 वीर मुझ गोविन्द-पुत्र तब मरि तो दूग नहि सीजेगा :  
 निज वन रणा प्रेम भाग ने गिरी रण उलटैता—  
 नयनिमित्त मन्दिर का देता - मरि नोन निमटैता ॥”



*Journal of Management Education* 30(6)









—

—



22

23

24

25



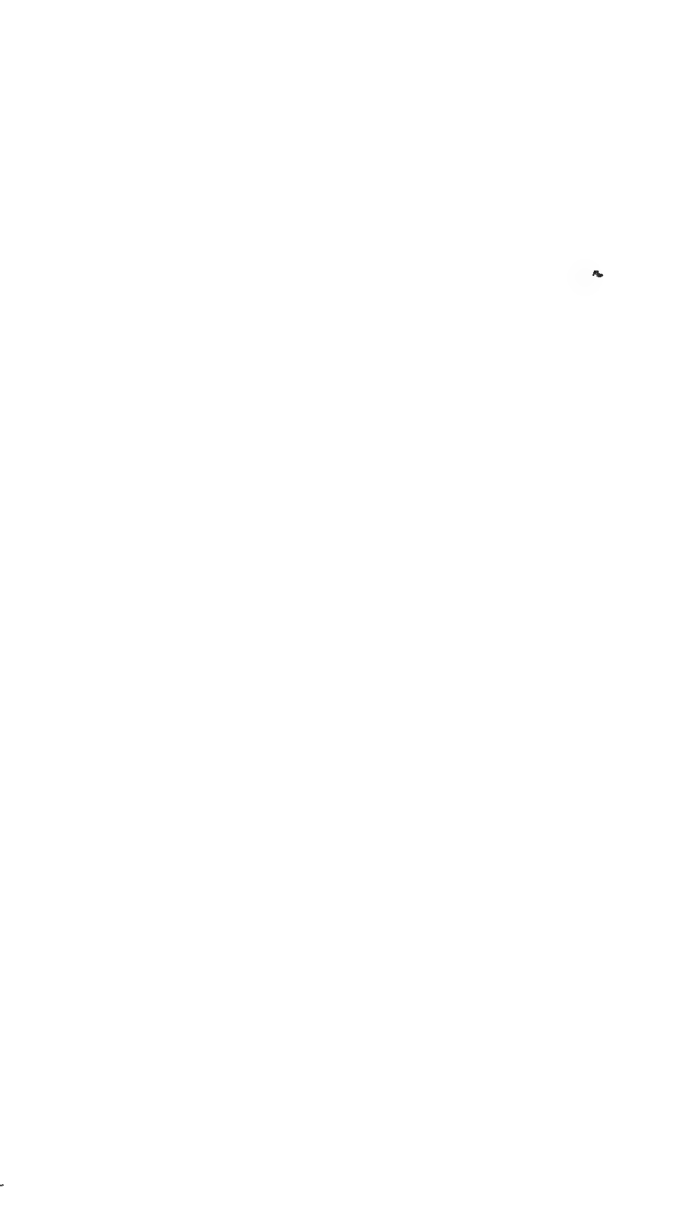






## कृपक-वधूटी

सोह रही, नन मोह रही है, घास खेत से निरा रही,  
 विरह-कथा राधा प्यारी की गा गा कर है सुना रही।  
 फूला देख खेत सरसों का, फूली नहीं समाती है,  
 पहन वसन्ती सारी प्यारी फूलों में मिल जाती है।  
 जब उसका पति मोट चलाता, वह पानी बरकाती है,  
 क्यारी बना-बना के चौरस जल से उसे पटाती है।  
 पांयों ने जब बाल निकाले, इस बालाने भी निज बाल—  
 करके मुक्त पीठ पर डाले, कुछ से टके बज ओ गाल।  
 जोता-योया रखवालों की, नीचा गेन पसीने से,  
 हरे हुए पांघे प्रमोद से, सीवर-आसव पाने से,  
 कनक रंग हली में छाया निरग्न लड़ी जौ-मालो की,  
 बड़े दाँत गेहूँ के तों भी नन्ही ह मन्वालों की।  
 कृपक वधूटी गेन बाँटना हस हस कर ल कर हसिया  
 गाती गान— सुगन्ध मारन प्रेम भरा अरुना बसिया  
 भर भर अक लटा कर रखता बाज डना-नगा हूँ  
 पवन वेग से प्राचल उड़ता बजा माना भरो हूँ  
 हाथ रोक बेसी तर जने, पीछे हट कर अगे उबार  
 चूड़ा दिल से निवृत्त भागता माना राज्य विन न निहार



## अभिसारिका

नंगे पाँव चली जाती है, लिये दूध की मटकी,  
गुखरू के कितने ही कौंटे पग में लगे, न अटकी।  
मारी की लहरी में पड़ कर झुक झुक शीश नवा कर,  
कुसुमित घासों ने पुष्पों से भेजा उसे सजा कर।  
लिपट गया लिपटौआ छिप कर, जितना उसे छुड़ाया,  
बिखर गया वस दूट दूट कर, विलग न होना भाया।  
पाँव बढ़ाये लपकी जाती, तू अपनी ही धुन में,  
खिचती जाती है पतंग-सी, बँधी प्रेम के गुन में।  
दूध बेचने के मिस निकली गोरस्त रही छिपाये,  
बोली नहीं तनिक, थी मानो मुँह में दही जमाये।  
कितने रसिक राह में उसकी, आँखे रहे बिछाये,  
चर्य कितने ही रस चखने को रहे बहुत ललचाये।  
आँख चुरा कर निकल गई झट ढेर न कही लगाई,  
आँख लड़ी जिस प्रियतम से थी, मिलने को वह धाई  
पुनः चल झुकनोर रहा था केशराशि-अलिङ्गल का  
बड़ा रहा य गिरिशृंग से आँचल के बादल के  
गिरे खंभे थे मस मस कर आनन्द के जलजल  
विजल यह होता जान था पाव न रुकते पल भर  
वान हाथ से मटका धामे सरकाव दूधट का  
उड़ते केशों को मँनालती कभी सरकते पद को



वन-ध्री

मेरे तन पर एक लँगोटी, वह भी फटी-पुरानी,  
काली कमली करे निवारण शीत, घाम औ' पानी।  
धन मेरा बस वेनु यही है, दिन भर जिसे चराता,  
पय-प्रसाद पा सुधा पान कर आनंद में छक जाता।  
रहने को नौपड़ी एक है, खर से जो है छाई,  
वह अँकोल के वृज-भुंड ने पड़ती तनिक दिखाई।  
कनक-वृज है गड़े वही पर पास नहीं है सोना  
शत्ययामला हरित भूमि का कोनल सुखद विद्यौना  
कतों पट्टारी वह सुन्दरायक कहां पृष्ठ का डेरा  
फिर भी सख ऊँ आना करना मेरे मन में तेरा—  
जबल है मगतप्राणा प्यारी है आकाश-कुलुम सा  
अनुचित होगा भूल करे यदि समनदार भी तुम-म  
म विचार ता अन्त है नही देखत आने  
नमो धिता न जान अन्त नमो धिता भागे  
ता अन्त है भावित है कय अन्त नमो धिता  
नमो धिता है भावित है कय अन्त नमो धिता

जबल जबल है नमो धिता  
नमो धिता है नमो धिता  
नमो धिता है नमो धिता  
नमो धिता है नमो धिता

## काँटा

खटक रहा हूँ मैं तो सबको अजब फँसा हूँ काँटे में ,  
देख उलझना सबका मुझसे मैं हूँ इक मन्नाटे में ;  
'रेंगनी'¹ हूँ मैं फूल हमारा शोभित सुन्दर ललित सुनील ,  
तारों की है मेख गगन मे यहाँ लगी सोने की कील ;  
खड़ा खड़ा कोमल पत्तों की करता मैं रखवाली हूँ ,  
नंगी भू का मैं भूषण हूँ जंगल की हरियाली हूँ ,  
मैं 'घमोय'² हूँ, कनक-कटोरा भरा ओस से ले ले कर ,  
सूर्यदेव को अव्यर्थ चढ़ाता हूँ वन वन में प्रतिवासर ;  
लोभी जीव न हाथ लगावे वन भर मैं अड जाता हूँ ,

धन-सी  
ॐ नमः

कहा—हे प्रिये ! न घबड़ाओ ,  
नहीं चिन्ता मन में लाओ ;  
प्राप्त कर विद्या भू-विज्ञान ,  
मिलूँगा शीघ्र, न संशय मान ।  
समय है थोड़ा जाने दो .  
तु चिन्ता मुख पर आने दो ,  
प्राणप्यारी ! दो विद्या सहर्ष  
दीतते क्या लगता है वर्ष !  
जलज पर हाथे थे जलकण .  
भीगते गाल चूम तन्त्रा ,  
देख प्रिय चन्द्र-वदन आलोक .  
उमड़ते तदय-वारि को रोव  
अधर की सरस लपट कर पान  
विश्राम प्रभु ने तुरत पय  
तन-स २० २१ दल  
२२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००





कहा, "क्यों रुठों महारानी,  
 चूक क्या हुई नहीं जानी,  
 नहीं अथ तक जो पूजी आस,  
 भाग्य में मेरे नहीं विलास,  
 हृदय-धन मेरे जो आते,  
 भाग्य सोचे मम जग जाते,  
 पूजती मैं भी तुमको आ,  
 धूम से स्वर्ण-प्रदीप जला।  
 पुनः लख श्यामल धन अभिराम,  
 नेत्र-पथ मे आये घनश्याम,  
 लगे बरसाने टपटप नीर,  
 भींग कर ललिता हुई अधीर।  
 कलेजे में उठती इक पीर,  
 पड़ी चू भू पर बन दृग-नीर,  
 टूक-सी उठी, भूमि पर गिर  
 लोटने लगी भूमि पर फिर।  
 पड़ी थी ज्यों पदाक भू पर,  
 उठाता यौन उसे ऊपर ?  
 थी आशा थी रेखा कादा,  
 अगल मे पपन ज्यों लादा,  
 अनिल सँग उठती गिरती थी,  
 सुगन-परिमल-सी फिरती जी।



## निठुर

कुहू-निशा कालिमा कामिनी-अलको-सँग सोई हिलमिल .  
 ऊपा-सा विकास था मुख पर, कंज-नयन विहँसे खिलखिल:  
 सजा सजा अपनी फुलवारी खींच मनोहर सुन्दर चित्र .  
 यौवन हो हो दिन दिन नुरभित लगा हँदने अपना मित्र ।  
 देखे रूप अनूप छबोले, लखे मनोहर युवक अनेक ,  
 देखे ठाट-वाट भड़कीले, प्रेमी बने एक से एक .  
 कोई उसको लगा रिझाने सीख सीख कर मोहन मंत्र .  
 विविध तांत्रिक अर्थ-निशा में लगे सिद्ध करने कुछ तंत्र ।  
 देखा कितना स्वाँग प्रेम का कोई भाया उसे नहीं .  
 विश्वमोहिनी ने अपना मनमोहन पाया कहीं नहीं .  
 नेत्र लम नहि हुए कहीं भी, हृदय कहीं भी भरा नहीं ,  
 जी बुल्लाया रहा प्रबोले, हुआ कहीं भी हरा नहीं ।

×

×

×

कहीं लग गई खोख एक से बर भी था भोलाभाना ,  
 सोरा हृदय अभी खरता था, पिदा नहीं था खर-खाला  
 दिजली दौर गई रग रग में, दोनों हुए परम खरखर .  
 तलना हस पर हँसिजावर, हुआ हृदय भी खरखर भ्रम ।  
 खोख लगी दो हृदय निरगये, निर भावों पर भूच खदे  
 पुत्रों ने दोहे जो दोहे दे प्रकृति के पूर नदे







क. ५१

दन्त मे हो तुल देवारा .

नदन-पंचवारों का नाग .

पिल्ल नर हर कनक-मंजरा .

गोह विविध भोगों का धारा ,

छाया पड़ी मे पर नारा  
मस कनक की नीर सिन्धारा







टूट कर अथवा वृक्ष रसाल ,  
छेद कर जिसकी सूखी डाल ;  
कीड़ियों का कर अनुसंधान ,  
क्रिया कठफुड़वे ने जलपान ;

ऐसे ही छेदों को चुन कर ,  
बनाते हो तुम अपना घर ।  
छेड़ने जो कौए आते ,  
ताक में अंडे के जाते ,

उन्हें तुम दौड़ा कर भरपूर ,  
मार कर चोंच भगाते दूर ,  
नाम भी तेरा है सुन्दर ,  
दरस भी तेरा है सुखकर ।

समझ कर नीलकंठ शकर ,  
विजयदशमी के अवसर पर ,  
सवेरे ही उठ कर सब लोग  
टूटते दर्शन का संयोग ।

पक्षियों में तुम हो घनश्याम ,  
दिखाया करो रूप अभिराम ।

---

किसने कहा कान मे मेरे, इस विहंग का नाम अग्नि,  
अग्नि और ये कुंज लहलहे, कैसे हो सकता मुमकिन !  
विरहानल किस वन मे व्यापा, कौन जला जाता प्रिय त्रिन,  
कैसा है अद्भुत रहस्य यह, मूर्तिमान क्या हुई अग्नि ?

ठहर ठहर तू कोयल मत वन—जो वसन्त भर रख अनुराग,  
फिर विहार करने चल देती, दूर देश में मुझको त्याग ।  
मेरे ही सँग तू दुख - सुख सह, लूटा यदि वसन्त का रस,  
तो पतझड़ मे भी नगी डाली पर फूल खिला हँस हँस ।

पिक तो ग्याम निठुर निर्मोही गया द्वारका हमे विसार,  
अग्नि ! राधिका संग डमी भू पर तू जल जल होना चार ।

---

निरा नम कर दिया चाँद नटा कर ,  
 महेली और माता से दूना कर ;  
 महेली मातंगेजी जटने से ,  
 सरस माता का नाता दूटने से ;  
 नभी बेचल हुई पदता न था कल ,  
 पलाती ही रही आठों पहर जल ;  
 कभी उठ उठ के पर्वत को निरराती ,  
 कभी कर याद माता की बिलराती ;  
 फलेजा करके पानी थी बहाती ,  
 दूरक जाता कभी डमकी थी छाती ,  
 पकड़ लेती कभी थी पेड़ की जड़ ,  
 कभी नट बट से कहती पाँव पल पल ,  
 छिपा लो निज जटा के जाल में वर ,  
 तुम्हों हो जाओ मेरे आज शरर  
 किसी युवती को देखा जो नहाते ,  
 बिलम्ब कर जल में लोचन-जल गिराते  
 तो कहती क्या सखों जाना हो समराल ,  
 जो इतना हो रही हा हाय ! बेहाल ,  
 छुटे माता-पिता घर जन्म-भू भी ,  
 वह वन-उपवन कभी जिनमें वो घूमी ,  
 हमारी छिन गई वह मौज सारी ,  
 पड़ा जीवन में अन्तर अब है भारी ,

## अन्धा कुआँ

आँख लगी थी जिस पर सबकी, आज हुआ वह अन्धा है ,  
जीवन दे जो श्रम हरता था, भूल गया निज धन्धा है ।  
टूटी पड़ी जगत है उसकी, जगत टूटता था जिस पर ,  
भूरि भूरि था जिसे सराहा, गया आज वह रज से भर ।

कभी न टूटा तार धार का, ऐसा जगता - सोता था ,  
देख विपुल जल-राशि मेव भी पानी भर भर रोता था ।  
गर्मी मे बाजार गर्म था जहाँ पिलाने का पानी ,  
आज हुआ है ठंडा सब कुछ मगर नहीं ठंडा पानी ।

लोग जहाँ भरते थे पानी , आज वही भरते हैं आह ,  
आते हैं जो बड़ी चाह से , पाते हैं वे सूखा चाह ।  
जिसके तट पर तरु के नीचे पथिक बैठ मुस्ताते थे ,  
शीतल जल पी करके जिसका शीतल हो मो जाने थे ।

उम तरु की जड़ , प्यास जगो पर, झूँ के भीतर जा कर ,  
लटकी ही रह गई सुधा-रस-समन मरस जीवन पा कर ।  
लोना लग लग ग्याता जाना है जो है सेवर इँटे ,  
खोद खोद मिट्टी निकाल कर बना रहे हैं बिल चींटे ।

## मन्दिर

कुछ काई रंगत लाई है ,  
पट की लकड़ी घुन-खाई है ;  
कुछ घास लटकती छाई है ,  
ईंटों में जो उग आई है ;

मंडप - ऊपर फैला के सोर ,  
वटवृक्ष पनप करता है जोर ।

टूटी छत मे ऊपर ऊपर ,  
छोटी चोंचों में ला कर पर ;  
कुछ अवाबील आ कर जा कर ,  
निष्कण्टक बना रही हैं घर ;

जा कभी गगन मे गाती हैं ,  
उड़ कभी पतंगे खाती हैं ।

लटका है इक बंटा काला ,  
कुछ लिपटा है जिस पर जाला ,  
मधुमक्खी ने नवरस ला ला ,  
बंटे का मुख है भर डाला ;

कुछ मधु का कोष बनाती हैं ,  
कुछ मोम लगा चिकनाती हैं ।

## इतिहास

अक्षरबद्ध पुस्तकें देखीं, हस्तलिखित बहु भाषाएँ,  
 शिला-लेख इतिहासक देखे किन्तु न पूजो आशाएँ;  
 देशद्वेष से, स्वाभिमान से, धर्म-पक्ष से रख कर लाग,  
 जाति जाति ने व्यक्ति व्यक्ति ने अपना अपना गाया राग;  
 पर अतीत ने प्रिय लेखक बन खींची जो सच्ची तसवीर,  
 उसमें त्रुटि की छूत नहीं है, पक्षपात का नहीं समीर;  
 बोल उठी रज राजपुताने की शोणित से सनी हुई,  
 “धर्म-देश-हित न्योछावर कर वीर पुत्र मैं धनी हुई,  
 पग मत धरना, मस्तक धरना, है कण कण मे सोता वीर,  
 फटक उठेगा रक्त शक्ति से अग्नि दलने को तुरत अधीर।”  
 गगा-जमुना कल कल करके कहती हैं बेकल-सी क्या?  
 कल की मुक्तको याद दिलातीं, देख आज की दलित दशा,  
 कहती हैं हर लहर तड़प कर, “कल था यही प्रताप बलों,  
 पहन रहा जंगल में सुग-सम्पति की शरण न ली;  
 वे दौत गये दुश्मन के, रग ली हिन्दूपन की लाज,  
 जिससे अरि कौप रहे थे कहाँ आज बह है मिरनाज।”  
 काशी, मथुरा, अवध आदि के मन्दिर टूटे जो हैं गेय,  
 टूटे-फूटे गवशं द्वारा गिर गिर देने क्या उपदेश?

## बाल-स्मृति

अभी था मेरा शैशव काल ,  
न व्यापा था जग का जंजाल ,  
चाल थी मन की बहु स्वच्छन्द ,  
नहीं था धारा में प्रतिबन्ध ।  
तार था बँधा न तालो मे ,  
बिहग था फँसा न जालो मे .  
किसी ने भरा न था निज स्वर,  
बना बसी, स्वतन्त्रता हर ।  
हुए थे छेद नहीं तन में ,  
बॉस था लहराता वन मे ,  
विपिन में मैं लहराता था ,  
राग मैं अपना गाता था ।  
मेरी हमजोली इक वाला ,  
बदन था सॉचे मे ढाला ,  
खेल मे देती मेरा साथ ,  
बिका था मैं भी उसके हाथ ।  
खेलते हम दोनों गुट्टी ,  
हँसी में भी न हुई कुट्टी ।



दूध से दोना लाते भर—

दूध का ड़क ढंठल ले कर ,  
गिरह दे, फंदा उसमें ढाल ,

भिगो कर उसे, फुला कर गाल ,  
फूँकता ढंठल ऊपर कर ,

व्योम गोलों से जाता भर ।  
बुलबुले चठते जाते थे ,

अनोखे रंग दिखाते थे ,  
य' मेरा नव विरचित मंसार ,

हमारे जीवन-सा सुकुमार ,  
फूँक में वनता, मिट जाता ,

तत्त्व जीवन का दिखलाता ।  
घटा जत्र सावन की छाई ,

प्रकृति वरसाती-रँग लाई ,  
कुमारी ने मन मे ठाना

फूल गोदने का गुदवाना ।  
देह थी कोमल मरस प्रमून ,

टपकता था छूते ही खून ,  
सुई लख कॉपी मानो वेत ,

चुभाने ही हो गई अचेत ।  
लाल हो गई रक्त से छाप ,

रग भर गया आप-से-आप ,



अन्तिम संस्कार तो कैसा, उनकी मिट्टी पर केवल,  
 मृगदल आ आ चित्रखचित हो बरसावेंगे लोचन-जल ।  
 आ कर शरद काँपते कर से चादर धवल चढ़ावेगा,  
 ऋतुनायक शत-शत फूलों से पावन भूमि सजावेगा;  
 ग्रीष्म शोक से पीला हो कर हा ! हा ! कर ले कर निःश्वास,  
 पत्ते गिरा गिरा आँसू से विकल फिरेगा बना उदास ।  
 आँखों की गंगा-जमुना ये बहा रही हैं अविरल धार  
 प्रेम-सरस्वति से मिल कर जो पावन कर संगम का वार—  
 विरहानल का आतप पा कर घन वन कर उड़ जावेगी,  
 बरस 'फूल' पर जीवन-धन के, शान्ति-सुधा बरसावेगी ।  
 जीवन के आधार हमारे मुख क्यों अपना छिपा लिया,  
 घर कर लिया दुखों ने घर में, सुख का घर कर दिया दिया;  
 तेरे शीघ्र मिलन से प्यारे वंचित करता है यह लाल,  
 तेरी यही धरोहर रखे काट रही हूँ जीवन-काल ।  
 सोते में क्या देख रहा है रह रह जो मुसकाता है,  
 हैं ! हैं ! चौंक उठा क्यों डर कर, कौन दुष्ट डरवाता है ?  
 चुप चुप मुन्ना ! राजदुलारे ! देखो बलि बलि जाती हूँ,  
 नजर लगी तो नहीं किसी की, राई-नोन जलाती हूँ ।  
 तू डर जावे ! वीर पुत्र हो ! वीर पिता का लघुतम चित्र,  
 जिसने रण में अरिमर्दन कर, किया वीरगति-लाभ पवित्र,  
 उसी आर्य का वीर सुअन तू ! स्वप्न देख डर जावे यों,  
 जीव अमर है, कायर बन कर कोई प्राण बचावे क्यों ?

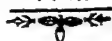
## सिन्दूर

गुड़ियों से मैं खेल रही थी, मुझे विश्व का ज्ञान न था ,  
मिट्टी के पक्वान बना कर उन्हें खिलाती ध्यान न था ।  
मेरा तो शृंगार बना देती थी मेरी माता ही ,  
वाल गूँधती बिठा गोद में तब मेरा उकताता जी ।  
देखा-देखी धीरे-धीरे गुड़िया लगी सजाने मैं ,  
छोटे-छोटे गहने ला कर उसको लगी पिन्हाने मैं ।  
बड़ी-बड़ी अपनी सखियों को देखा आभूषण पहने ,  
मेरे मन में भी यह आया पहनूँगी मैं भी गहने ।  
माता से जा रोदन ठाना, कड़े-छड़े बनवाने को ,  
टीका, चन्द्रहार चमकीले कंगन, पहुँची पाने को ।  
बड़े बाप की बड़ी लाड़िली तुरत बुलाये गये सुनार ,  
कड़ी मजूरी पा कर सबने सारे गहने किये तयार ।  
फिर क्या था, मैं रुनुक-भुनुक पैजनी बजा झनकाती माँझ ,  
सखियों मे राधारानी-सी खेल खेलती प्रातः साँझ ।  
मुन्ना ने जो देखा मुझको आभूषण पहने सुन्दर ,  
लेने को वैसे ही गहने लोट गया रो कर भू पर ।  
'चमकीले सुन्दर गहने जो तुमने इन्हें मँगाये हैं',  
ठुनुक ठुनुक बोला माँ से 'माँ मेरे लिये न आये हैं ?'

ग्रीष्म था, भीषण गर्मी थी, पंखा मैं भी झलती थी,  
एक कोठरी में सोई थी भूमि तवा-सी जलती थी।  
जाने पाती थी नहि बाहर घर में रहती कड़ी निगाह,  
कभी कभी वन के फूलों के लखने की होती थी चाह।

+ + + +

एक दिन ढोलक लगी ठनकने, होने लगा मधुर संगीत,  
झुंड झुंड युवती जुड़ आई गाने लगीं नाच कर गीत।  
माता मुझसे लिपट लिपट कर विलख विलख कर रोती थी,  
'पाला जिसे कलेजे में रख विलग वही मैं होती थी।  
हे भगवान! नारियों को क्यों ऐसा अहह! अधीर किया?  
हृदय दिया होना पत्थर का, जो इनका यह दुःख दिया।  
जिमका मुंह था मदा जाहती, टे हरि! वह क्यों जानी है?  
हुई हमरे घर की वह क्यों? कहते 'हटती आता है।'  
रोती थी मैं ची खो खो कर, कर वियोग दुःख का अनुमान,  
भाना पिता बहन-भाई का विरह व्यथा लना या मान।  
कुल, परिवार, सहेला मेला, घर आगत यह रूप निरान,  
नाथ! नाथ! कैसे आइगा, फिर कब दूखगा भगवान?  
ग्याना-पीना माना हमना य मय मक्तम विदा २१,  
वस केवल था राना पीना जो मम मनी मदा २२  
चौक पुरा था उस आगत से मउप मन्दर राना २३  
पदव-गुन था मलश मनीदर मय रूप म मना २४



ग्रीष्म था, भीषण गर्मी थी, पंखा मैं भी झलती थी,  
 एक कोठरी में सोई थी भूमि तवा-सी जलती थी।  
 जाने पाती थी नहि वाहर घर में रहती कड़ी निगाह,  
 कभी कभी वन के फूलों के लखने की होती थी चाह।

+                      +                      +                      +

इक दिन ढोलक लगी ठनकने, होने लगा मधुर संगीत,  
 झुंड झुंड युवती जुड़ आई गाने लगीं नाच कर गीत।  
 माता मुझसे लिपट लिपट कर विलख विलख कर रोती थी,  
 'पाला जिसे कलेजे में रख विलग वही मैं होती थी।  
 हे भगवान्! नारियों को क्यों ऐसा अहह! अधीर किया?  
 हृदय दिया होता पत्थर का, जो इनको यह दुःख दिया।  
 जिसका मुँह थी सदा जोहती, हे हरि! वह क्यों जाती है?  
 हुई दूमरे घर की वह क्यों? कहने फटती आती है।'   
 रोती थी मैं जी खो खो कर, कर वियोग-दुःख का अनुमान,  
 माता पिता बहन-भाई का विरह व्यथा लेनी या जान।  
 कुल, परिवार, सहेली मेली, घर-आँगन यह रूप निधान,  
 हाय! हाय! कैसे छोड़ेंगी, फिर कब देखेंगी भगवान?  
 खाना-पीना, सोना हँसना ये सब मुझसे विदा हुए,  
 बस केवल या रोना याचना जो समझी सदा हुए।  
 चौक पुरा या उस आँगन में, मड़प मुन्दर बना हुआ,  
 पल्लव-युत या कलश मनोहर, पत्र-पुष्प से सजा हुआ।

## वंसी

लाया पकड़ पंतगे भुनगे, ले आया हूँ चारा भी ;  
औ' वंसी मेरी चोखी है, मन्द यहाँ है धारा भी ।  
इसी करारे पर मैं बैठूँ, जल में जो है कड़ा हुआ ,  
जलकुम्भी कुछ तैर रही हैं, है सिवार भी बढ़ा हुआ ।  
वनमुर्गी भाड़ी से निकली, बच्चे लिये किनारे पर ,  
जल में फैली, जड़ पर बैठी, लगी चुगाने क्रीडा कर ।  
जल को मानो छूते ही से उड़ते यहाँ जुलाहे हैं ,  
जिन पर टूट रहे मुँह खोले अवाधील औ' चाहे हैं ।  
कुछ खाने को आहा ! कैसी उछल पड़ी मछली ऊपर ,  
विजली-सी पनडुब्बी कैसी टूट पड़ी चिपका कर पर ।  
यहीं लगाता हूँ बस वसी, यहीं लगेगी मछली भट ,  
जल से बुल्ले छूट रहे हैं, है शिकार की कुछ आहट ।  
बैठा हूँ चुपचाप घात में व्यान धरे बगले के साथ ,  
डोरी हिलो, दिया भटका भी, किन्तु नहीं कुछ आया हाथ ।  
ऊब गया घटों में बंठा तौल तौल पर कितनी बार ,  
पनडुब्बी पाना में गिर कर अपना करती रही शिकार ।  
बगले ने भी तब से कितने जीवों को है खा डाला,  
पर मेरे ही लिए पड़ा क्यों मछली का इकदम ठाला ।

## भड़भूँजा

मंजु ऋतुराज सबको माता है ,  
 नव-कुसुम-दल का जो विधाता है ,  
 पर मुझे श्रीष्म नवसे प्यारा है ,  
 मेरे जीवन का जो सहारा है ,  
 दीन हूँ, मैं गरीब भूखा हूँ ,  
 विश्व का एक पत्र सूखा हूँ ।  
 डाल जिसको उठाये श्री मर पर ,  
 प्रेम-रस दे के जिसको रक्खा तर ,  
 श्रीष्म ने रमको प्राज्ञ पोला कर ,  
 प्रम-वधन का खुद टोला कर ,  
 दे के लोका गिरा दिया न पर ,  
 मिट्टा मोने का कर दिया उ कर ।  
 पवन उनको उठाये 'करता '  
 जा चट वह अवश्य करना है ,  
 अग्नि, मैं भी रनिन हा पन मा  
 वसन्त का समाज में उ गिरा ।  
 मृन्मे लो हा उस उद्धार वदर ,  
 धरन लन उद मा कीन विचार ,









सेती अडे-वच्चो को थी, छिपी खेत में वेचारी,  
आहत सुन कर उड़ जाती है चिड़िया इक भय की मारी।  
उड़ जाते तब होश ठिठक कर, खड़ी निरखती इधर-उधर,  
देख बिहग मँड़राता ऊपर, नीचे फिर देखा फिर कर।  
छोटे दो वच्चों को देखा चे चें करते मुँह बाचे,  
बिना पंख के छोटे डैने, बाल न थे तन पर आये।  
दुखी हुई, क्यों इन्हें सताया, “चिड़िया! इन्हें चुगा आ कर”,  
ऊपर देख, बुला कर ऐसे, चली गई घर पछता कर।  
गई नहीं फिर खेत काटने जब तक हुए न परवाले—  
उड़ जाने पर, वही भूमि पर नन्हा निज बालक डाले।  
काट-काट कर ढेर लगा कर भर भर कर अपना गलिहान,  
पीटा, मोंडा और उसाया पनि सँग मिल, सह कष्ट महान।  
अब इसकी होंली होंवेगी, गावेगी यह भी अब राग,  
रग-भरे नयनों में प्रिय सँग लिपट लिपट खेलेंगी फाग।

---































